जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ
प्रकाशन सूची

नाम	लेखक/सम्पादक	मूल्य
Reflection & Clarification	Acharya Mahaprajna	30
Views & Issues	Acharya Mahaprajna	30
agwan Mahavir Life & Doctrine	Shri S.C. Rampuria	300
- The Third Eye	Acharya Mahaprajna	195
Jainism	Prof. M.R. Gelra	200
t for Truth	Acharya Mahaprajna	195
Silence	Acharya Mahaprajna	140
to Jainism	Sadhvi Vishrut Vibha	39
es & Science	Prof (Dr.) M.R. Gelra	400
nce Relative Economics	Prof. B.R. Dugar/Dr. Satya Prajna/	
w Social Order	Dr. Samani Ritu Prajna	500
gy	Late Shri Jetha Lal S. Zaveri/	
	Prof. Muni Mahendra Kumar	200
a	Late Shri Jetha Lal S. Zaveri/	
	Prof. Muni Mahendra Kumar	450
nasika Sabdakosa	Mukhya Niyojika Sadhavi Vishrutavibha	1125
2	Acharya Mahaprajna	1695
	Eng. Trans. by Prof. Muni Mahendra Kumar & Late Dr. N. Tatia	
BU Research Work	Samani Agam Prajna/Dr. Vandana Mehta	100
hy of Jain Text in Tamil	Shri K.P. Aravaanan	50
na of the Universe	Prof. Muni Mahendra Kumar	500
ditation and Human Health	Prof. J.P.N. Mishra and Dr. P.S. Shekhawat	500
ज्ञ का संस्कृत साहित्य	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	550
र्य महाप्रज्ञ का योगदान	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय/डॉ. जे.पी.एन. मिश्रा	100
भाग-1	श्री श्रीचंद रामपुरिया	50
भाग-2	श्री श्रीचंद रामपुरिया	60
कमा	श्री श्रीचंद रामपुरिया	60
	श्री श्रीचंद रामपुरिया	150
न जीवन प्रसंग	श्री श्रीचंद रामपुरिया	80
क्ति खण्ड-1	डॉ. समणी कुसुम प्रज्ञा	400
महावीर	साध्वी शुभ्रयशा	150
मीक्षात्मक अनुशीलन	समणी स्थित प्रज्ञा	100
	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	100
ो उपयोगिता	डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	100
	डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	100
ौर जीवन मूल्य भाग-1,2,3	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा	75
ंका	पं. विश्वनाथ मिश्र	120
और स्वास्थ्य	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा/समणी श्रेयस प्रज्ञा	120
	डॉ. जे.पी.एन. मिश्रा	400
हित्य में गणित	डॉ. अनुपम जैन	200
शब्दकोश	मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा	995
ुख सिद्धान्त	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा	110
मूल्य विकास	डॉ. समणी मल्लि प्रज्ञा/डॉ. हेमलता जोशी	160
योग	डॉ. समणी ऋजु प्रज्ञा	150

TULSÍ PRAJÑÁ Vol. 162-163-1

ISSN 0974-8857

तुलसी प्रज्ञा

TULSÍ PRAJÑÁ

वर्ष 41 • अंक 162-163-164 • अप्रेल-दिसम्बर 2014

A Peer Reviewed Research Quarterly

जैन विश्वभारती संस्थान
लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान) भारत

हिन्दी खण्ड

विषय	लेखक	पृ. संख्या
गीता दर्शन में त्याग की अवधारणा	डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी	91-97
उत्तराध्ययन सूत्र में मानवीय मूल्य : एक विमर्श	डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा	98-105
उपनिषदों में अहिंसा के स्वर	डॉ. समणी सत्यप्रज्ञा	106-111
गांधी का मानवीय अर्थशास्त्र	डॉ. जुगल किशोर दाधीच	112-118
अद्वैत एवं बौद्ध दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. योगेश कुमार जैन	119-128
संस्कृतकाव्यशास्त्र एवं प्राकृतकाव्यसाहित्य	डा. सुमन कुमार झा	129-138
आचार्य तुलसी का स्वस्थ समाज संरचना में योगदान	डॉ. सुनीता इन्दोरिया	139-144

अनंत की अनुभूति

अनंत की अनुभूति तब तक नहीं हो सकती, जब तक कषाय क्षीण नहीं होता। जब तक हमारा मन रंग से रंगा हुआ होता है, हमारी चेतना रंगीन होती है तब तक अनन्त की अनुभूति नहीं हो सकती। कषाय के दो संवाहक हैं—अहंकार और नमस्कार। अहंकार और ममकार जब तक विलीन नहीं होते, तब तक हमारी सान्तता समाप्त नहीं होती। सान्तता समाप्त हुए बिना अनन्त की अनुभूति नहीं होती। अनन्त की अनुभूति के लिए सबसे महत्वपूर्ण है अहंकार और ममकार का विलय।

—आचार्य महाप्रज्ञ

गांधी का मानवीय अर्थशास्त्र

—डॉ. जुगल किशोर दाधीच

गांधी के आर्थिक विचारों का दार्शनिक विवेचन यह दर्शाता है कि आधुनिक अर्थशास्त्री प्रायः पृथक एवं पूर्णतः स्वायत्त प्रतिमान निर्मित करते हैं जो कि उनके स्व और शेष विश्व के मध्य स्पष्ट विभाजन की स्वीकृति की धारणा से संगति रखता है। उनके अनुसार मनुष्य को लिप्साओं से संचालित होने वाला एक सीमित, भौतिक और यांत्रिक प्राणी मात्र मान लिया जाता है। वस्तुओं के उपभोग से होने वाली लिप्साओं की तुष्टि उसे खुशी प्रदान करती है और 'एक तथाकथित विवेकी व्यक्ति' सदैव उसे बढ़ाने की कोशिश में लगा रहता है। इस प्रकार व्यक्ति को असीमित इच्छाओं का उपभोक्ता मात्र समझा जाता है एवं एक अर्थशास्त्री का, सामान्यतः, उद्देश्य भौतिकवाद का अनुसरण करते हुए संपत्ति में वृद्धि और मानव के कल्याण व सुख में वृद्धि हेतु वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता हेतु तीव्र आर्थिक वृद्धि-दर की प्राप्ति करना मात्र हो जाता है। अतः असीमित तकनीकी प्रगति को उत्पादन में वृद्धि करने हेतु अपनाया जाता है, क्योंकि अर्थशास्त्र में 'अधिक' हमेशा और 'अच्छा' होता है।[1]

गांधी के आर्थिक विचार मात्र आर्थिक प्रश्नों की शास्त्रीय व्याख्या पर आधारित नहीं हैं। गांधी चूंकि जीवन को समग्र दृष्टिकोण से देखते थे, अतः उन्होंने नैतिक आस्थाओं को भी आर्थिक क्षेत्र में लागू करने का प्रयास किया। इसी कारण गांधी ने आर्थिक विचारों की अपनी पद्धति को 'मानवीय अर्थशास्त्र' की संज्ञा दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि आर्थिक संबंधों में सत्य और अहिंसा की प्रयुक्ति मानवीय अर्थशास्त्र का आधार है।

गांधी की स्पष्ट मान्यता है कि 'अर्थशास्त्र' व 'नैतिकता' वस्तुतः एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं। अतः शाश्वत व उदार नैतिकता उनके आर्थिक विचारों की आधारशिला है।

उन्होंने नैतिकता-विहीन आर्थिक सिद्धांतों को प्राणविहीन अर्थशास्त्र की संज्ञा दी। उनके शब्दों में वह अर्थशास्त्र, जो नैतिक और भावनात्मक पक्षों की उपेक्षा

करता है, मोम की मूर्ति की तरह है, जो लगी है, जो लगती चाहे सजीव हो, किंतु होती प्राणविहीन है।[2]

इस संदर्भ में डॉ. सनयात सेन द्वारा बताए गए तीन आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार करना उचित है- राष्ट्रवाद, प्रजातंत्र और आजीविका। डॉ. सनयात सेन के अनुसार हमारा नियोजन स्वदेशी सभ्यता और संस्कृति-आधारित होना चाहिए तथा राष्ट्र के किसी वर्ग एवं समूह विशेष के स्थान पर संपूर्ण राष्ट्र के कल्याण व सुख में बढ़ोतरी करने वाला हो, यह आर्थिक विकास का प्रथम सिद्धांत होना चाहिए। नियोजन का परिणाम लोकतांत्रिक हो, न सर्वाधिकारवादी नियंत्रणों से नियंत्रित होने वाले लोगों की पलटन। आर्थिक विकास राज्य के नियंत्रण व दबाव को न्यूनतम करने वाला हो। यह स्मरणीय है कि आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक प्रजातंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः विकास का तीसरा सिद्धांत न्यायपूर्ण व सम्मानजनक साधनों से प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आजीविका के अर्जन का अधिकार प्रदान करना होना चाहिए।[3]

डॉ. सनयात सेन द्वारा उल्लिखित नियोजन के तीनों सिद्धांतों में महात्मा गांधी का समर्थन देखा जा सकता है किंतु थोड़ा भिन्न तरीके से। गांधी औद्योगिकीरण को रोकना चाहते थे, साथ ही राष्ट्रवाद गांधी की कल्पना में विकास का महत्वपूर्ण आधार है, किंतु अंतर्राष्ट्रवाद का वह अनिवार्यतः पूरक होना चाहिए।

गांधी ने स्पष्टतः इंगित किया कि 'मेरे लिए भारत एवं समस्त विश्व के आर्थिक संविधान में कोई भी व्यक्ति भोजन तथा वस्त्र के अभाव से पीड़ित न हो। अन्य शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति के पास इन दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पर्याप्त रोजगार हो। इस आदर्श की प्राप्ति सार्वभौमिक रूप से संभव है, यदि जीवन की प्रारंभिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन साधारण जन के नियंत्रण में हों। ये प्रत्येक व्यक्ति को हवा और जल की भांति आसानी से सुलभ हों एवं किसी भी व्यक्ति, समूह अथवा राष्ट्र द्वारा उन पर एकाधिकार स्थापित करने का प्रयास अन्यान्य माना जाए। इस साधारण सिद्धान्त की उपेक्षा ही निराश्रयता का कारण बनती है जो कि आज न केवल भारत में, वरन् विश्व के अन्य भागों मे भी दिखाई दे रही है।[4]

गांधी की सोच के अनुसार, 'नियोजन प्रत्येक नागरिक के जीवन से जुड़ा हुआ होना चाहिए और साधारण मनुष्यों में से साधारणतम को नियोजन का अर्थ एवं उद्देश्य समझना चाहिए। विकास की प्रक्रिया में साधारण जन की भागीदारी होनी चाहिए तथा इस प्रक्रिया में राज्य की भूमिका न्यूनतम होनी चाहिए। व्यक्तियों को भुगतान लाभ के आधार पर नहीं, वरन् गांव के लोगों के औसत उपार्जन के आधार पर करना चाहिए।'

इस प्रकार का नियोजित विकास श्रमकेंद्रित होगा, न कि पूंजीकेंद्रित। निर्यात हेतु उत्पादन को अंतिम प्राथमिकता देनी चाहिए। वन नीति का उद्देश्य वनों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना होना चाहिए ताकि वे लोगों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें तथा लगान के स्तर में वृद्धि के स्थान पर उनकी आर्थिक गतिविधियों का स्तर बना रहे। खनिज संसाध

लालच के आधार पर दोहन नहीं होना चाहिए। यातायात और संचार नीति ग्रामीणों
र्थिक हितों की रक्षा के लिए हो, न कि गांव से धन की निकासी कर उन्हें और गरीब
वाली। उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन का केन्द्रीयकरण न हो।

. कृषिगत विकास, 2. ग्राम उद्योगों का विकास, 3. आवास, स्वास्थ्य व स्वच्छता में
4. ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार, 4. ग्राम संगठनों की प्रोन्नति, 5. ग्रामों के
ति विकास को प्रोत्साहन नियोजन की सर्वोच्च प्राथमिकता होगी।[5]

ास्तविक नियोजन में संसाधनों का समुचित उपयोग निहित होता है। यह पूर्ण रोजगार
दर्श से संगति रखता है, जैसा कि अर्थशास्त्री मानते हैं एवं इसमें प्रत्येक व्यक्ति को
रोटी कमाने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। गांधी ने अपने देशवासियों से कहा था-
क कोई भी सामर्थ्यवान पुरुष और स्त्री बिना भोजन अथवा रोजगार के हैं तब तक
राम करने और पर्याप्त भोजन करने में शर्म महसूस करनी चाहिए।"[6] इस प्रकार
योजना में श्रम और भोजन दोनों साथ है तथा नियोजन के आधारभूत उद्देश्य भी है।

स्संदेह गांधी ऐसा प्रतिमान चाहते थे जिसमें बेरोजगारी दूर हो जाए। भारत के संदर्भ
को राजगार उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से तथा गरीबी निवारण हेतु वे ग्रामीण उद्योगों
दी का व्यापक स्तर पर कार्यक्रम चलाना चाहते थे। वे कहा करते थे– यदि सरकार खादी
ोद्योग के बिना भी लोगों को पूर्ण रोजगार प्रदान कर सकती है तो इस क्षेत्र के समस्त
क कार्यक्रमों को मैं बंद कर दूंगा। श्री मन्नारायण से न्यूनतम मानकों की चर्चा करते हुए
कहा–'ये न्यूनतम मानक प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हों और निर्धनतम को विशेष रूप से'
ोजन, वस्त्र एवं आवास के सम्बन्ध में क्षेत्रीय स्वावलंबन चाहते थे।

ांधी आधुनिकीरण और पुनर्निर्माण के भी पक्षधर थे, किंतु साथ ही उनकी यह धारणा
आर्थिक विकास और आर्थिक उन्नति के लिए सर्वोदय का साररूप अंत्योदय है।

ांधी आर्थिक विकास के प्रतिमानों द्वारा सूक्ष्म-इकाई आधारित नियोजन में विश्वास
थे जो कि धीरे-धीरे निकटवर्ती क्षेत्र, राष्ट्र और अंततः विश्व को इस हेतु प्रोत्साहित
के। सेवाग्राम में अपने सहयोगियों से बात करते हुए उन्होंने कहा था–'सेवाग्राम को
दर्श गांव के रूप में रूपांतरित करना उतना ही कठिन है जितना कि भारत को आदर्श
रूप में विकसित करना। किंतु एक बार यदि ऐसा प्रतिमान बन जाए तो यह न केवल,
, संभवतः संपूर्ण विश्व के लिए आदर्श प्रतिमान होगा।' गांधी ने अधिक घनत्व वाले
ं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में विकेंद्रित उत्पादन को प्रोत्साहित किया, क्योंकि अधिक
न व पूर्ण रोजगार की समस्या सामूहिक उत्पादन की तुलना में समूहों द्वारा उत्पादन से
हो सकती थी।

विकेंद्रित नियोजन के संबंध में गांधी की प्रायः यह आलोचना की जाती है कि नियोजन
धार ही केंद्रीयकरण होता है तो गांधीवाद व नियोजन दोनों एक साथ कैसे चल सके

हैं? गांधी-विचारों में इसका समाधान इस प्रकार किया जाता है–

नियोजन शब्द के प्रति विरोध तकनीकी रूप से मान्य हो सकता है, किंतु वे पूरी तरह आश्वस्त हैं कि इस विरोध में कोई सार नहीं है। वे अस्वीकृत करते हैं कि नियोजन का आधार केवल केंद्रीकरण हो सकता है। केंन्दीयकरण की भांति विकेंद्रीकरण नियोजित क्यों नहीं हो सकता।[7]

गांधी नियोजन की पद्धति में साध्य अैर साधन की पवित्रता में विश्वास करते थे। गांधी का हिंसा से से कोई लेना-देना नहीं था, क्योंकि एक नियोजित समाज केवल साधन है, स्वयं में कोई साध्य नहीं। यदि यह साध्य भी होता तो गांधी कभी भी साध्य को साधनों के औचित्य कै रूप में नहीं स्वीकार करते थे। साध्य की पवित्रता को बनाए रखने हेतु प्रयुक्त साधन भी समान रूप से पवित्र होने चाहिए। अतः गांधी हमेशा कहते थे कि एक समाजवादी समाज भी अहिंसा पर आधारित होना चाहिए, न कि खूनी क्रांति पर।

गांधीय विचारधारा पर आधारित नियोजन प्रतिमान निम्नांकित आर्थिक सिद्धांतों पर निर्मित किया जा सकता है।

(1) सादगी और सीमित लिप्साएं

गांधी का विचार था कि आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता का सबसे बड़ा दोष इच्छाओं की अधिकता होना है। आधुनिकीकरण की पाश्चात्य धारण सादगी और न्यूनतम आवश्यकताओं के विचार से मेल नहीं खाती। गांधी के अनुसार–वस्तुओं की अधिकता के लिए लालच सुख, संतोष व शांति के लिए हानिकारक है।[8]

हमारी आर्थिक नीतियों को गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लाखों लोगों की की आवश्यकता के अनुरूप बनाया जाना चाहिए।

(2) अहिंसक उत्पादन : उचित तकनीकी

ऐसी किसी भी तकनीक का प्रयोग नहीं होना चाहिए जो रोजगार बढ़ाने में सहायक होने की अपेक्षा पूर्वतः नियोजित श्रम को भी विस्थापित कर दे।

(3) अहिंसक कार्य : रोटी के लिए श्रम का सिद्धान्त

गांधी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रोजी-रोटी कमाने हेतु श्रम करना चाहिए। गांधी का विश्वास था कि प्रतिदिन मात्र एक घंटे का शारीरिक श्रम भी चिकित्सा या वकालात जैसे व्यवसायों में लगे हुए लोगों में श्रम के प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न कर देगा तथा उनमें ऐसा दृष्टिकोण विकसित करेगा कि वे श्रम से जीविका कमाने वाले व्यक्तियों को आर्थिक कठिनाईयों के प्रति संवेदनशील हों। यह मनः स्थिति उन्हें उनके शुल्क उदार करने हेतु प्रेरित कर देगी। कवि और दार्शनिक भी शारीरिक श्रम से प्रेरित होकर अधिक सृजनशील बन जाएंगे। उन्होंने शरीर श्रम के विचार को दिव्य माना और कहा–ईश्वर ने मनुष्य का निर्माण श्रम द्वारा अपना भोजन प्राप्त करने के लिए किया है। जो श्रम किए बिना खाते हैं–वे

उनका मत था कि कायिक श्रम की अनिवार्यता को स्वीकार कर लेने से विभिन्न के मध्य भेदभावों का आधार ही समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार शरीर श्रम का ानता और सामाजिक सद्भाव–दोनों को एक साथ सुनिश्चित करेगा जो कि शांति ार्य शर्त है।

ंसक वितरण समानता

ी समानता में मुख्यतया दो बातों को शामिल करते थे- 1. प्रत्येक व्यक्ति को जीवन कार प्राप्त हो, अर्थात् उनकी न्यूनतम आवश्यकताएं पूर्ण हों एवं 2. समानता अर्थात् ा अभाव। उनका मत है- 'जीवन के प्रति दृष्टिकोण में जब स्वार्थ केंद्रीय तत्त्व बन तब असमानता सामाजिक व्यवस्था का सहज तत्त्व बन जाता है और शोषण और समानता के साथ जुड़ जाते हैं।[10] इस प्रकार उनके मत में स्वार्थ ही समाज में ता, शोषण और दमन और अंततः संघर्ष का मूल कारण है। इस प्रकार आर्थिक ं स्वार्थवृत्ति का निराकरण करके वे एक शांतिपूर्ण समतामय समाज की स्थापना करना ।

हिंसक साझेदारी : सहयोग

धी प्रतिस्पर्द्धा में विश्वास नहीं रखते थे। गांधी के अनुसार प्रतिस्पर्द्धा से भय और असुरक्षा ा होता है, जबकि सहयोग परस्पर सहायता को प्रोत्साहित करता है।[11]

ंधी वर्ग-संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग के हिमायती थे। गांधी ने भलीभांति यह स्पष्ट या कि वे वर्ग संघर्ष के अस्तित्व को नहीं नकारते। वे वस्तुतः उसके औचित्य को ार करते हैं, क्योंकि वे दृढ़ता से अनुभव करते हैं कि उसे टाला जा सकता है। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि वर्ग सहयोग के विचार का अर्थ पूंजीवादी शोषण का समर्थन नहीं है। अपितु वे चाहते थे कि शोषणकर्त्ताओं से किसी भी प्रकार का सहयोग न जाये।[12]

अहिंसक उपभोग : अपरिग्रह

यह अवधारणा आवश्यकताओं को न्यूनतम करने से सम्बन्धित हैं। अहिंसा अपरिग्रह भिन्न रूप से जुड़ी हुई है। आखिरकार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की न्यूनतम यकताओं की पूर्ति का अधिकार प्राप्त है, अतः व्यक्ति को लाखों लोगों की सामर्थ्य से स्तु को न रखने के स्वर्णिम सूत्र को जीवन में अपनाना चाहिये। यह मानवीय लिप्साओं अधिकता का भी निषेध करेगा।[13]

आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था

गांधी ने स्पष्ट किया कि ऐसी अर्थव्यवस्था ग्राम प्रधान लघु एवं कुटीर उद्योगों पर आधारित । इस व्यवस्था में उत्पादन के लिए भारी भरकम और आधुनिक मशीनों का आश्रय नहीं ा जाएगा। अतः उत्पादन विपुल मात्रा में नहीं होगा और न ही भारी मात्र में पूंजी के विनियोग

की आवश्यकता पड़ेगी। इस उत्पादन प्रणाली में पूंजी की तुलना में श्रम की प्रतिष्ठा होगी[14], अतः उत्पादन शोषण को जन्म नहीं देगा।

विकेन्द्रीकरण इस व्यवस्था का मूलमन्त्र होगा। इस व्यवस्था में स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपभोग और विवेक सम्मत वितरण अर्थव्यवस्था के निर्देशक सूत्र होंगे जिसमें कि व्यापकतम भागीदारी से केन्द्रीकरण की समस्या स्वयं सुलझ जाएगी। इस विकेन्द्रीकृत ग्राम प्रधान अर्थव्यवस्था में श्रम एवं पूंजी के मध्य विवाद नहीं होंगे और गरीबी, बेरोजगारी और असमानता की समस्या भी नहीं होगी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के माध्यम से गांधी ऐसे आत्मनिर्भर, समुन्नत और सुसंस्कृत ग्रामीण जीवन की कल्पना करते हैं जिसमें अभावों, कटुता, घृणा द्वेष और भौतिक उपलब्धियों की लालसा आदि के लिए कोई स्थान ही नहीं हो ऐसी आदर्श व्यवस्था अनिवार्यतः अहिंसक व्यवस्था के रूप में फलित होगी।

(8) अहिंसक स्वामित्व : ट्रस्टीशिप

गांधी के अनुसार व्यक्तिगत व सामुदायिक हितों के मध्य कोई संघर्ष नहीं है। गांधी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के तहत अहिंसक क्रान्ति के माध्यम से समतामयी समाज की स्थापना का सूत्र दिया।

यदि धार्मिक वर्ग "त्येन व्यक्तेन भुंजिता'[15] अर्थात् त्यागपूर्वक उपभोग का सिद्धान्त अपना ले, अपनी स्वयं की आवश्यकताओं की सादगी पूर्वक पूर्ति करें और शेष धन का स्वयं को जनता का न्यासी मात्र समझे तो आर्थिक समानता स्वतः स्थापित हो जाएगी। इस व्यवस्था में पूंजीवाद व साम्यवाद दोनों व्यवस्थाओं के दोषों का क्रमशः निराकरण हो जायेगा।

गांधी के इस सिद्धान्त की प्रेरक शक्ति आर्थिक नहीं अपितु नैतिक है। वस्तुतः इसी आधार पर उसकी व्यवहार्यता पर शंका की जाती है। आलोचकों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि धनिक वर्ग से नैतिक अपील की प्रभावशीलता संन्देहास्पद है।[16]

गांधी ने प्रन्यासिता के विचार की व्यावहारिकता के प्रति किए गए संदेहों का निराकरण किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रन्यासिता का विचार उनकी समग्र आर्थिक योजना का ही एक हिस्सा है, अतः उसका मूल्यांकन–उनकी आदर्श आर्थिक प्रणाली के अन्य तत्त्वों के साथ मिलाकर ही किया जाना चाहिए। अर्थ व्यवस्था के विकेंद्रीकृत स्वरूप को अपना लेने के पश्चात तो किसी व्यक्ति को विपुल मात्रा में संपत्ति के उपार्जन का अवसर प्राप्त नहीं होगा तथा जो सीमित संपदा वह अर्जित करेगा उसमें अपनी आवश्यकता भर रखने के पश्चात् शेष को समुदाय के हित में समर्पित करने में उसे संकोच या कष्ट नहीं होगा। गांधी ने ध्यान दिलाया कि अपनी संपदा में से कुछ दान करने की प्रवृत्ति मानव स्वभाव का एक सहज तत्त्व है। भारतीय संस्कृति में तो दान को व्यक्ति के नैतिक उत्थान हेतु अनिवार्य माना गया है। न्यासिता का विचार तो इस सहज दानवृत्ति को, आर्थिक गतिविधियों का प्रेरक नियम बनाकर सहज मानवीय भावनों को ही व्यवस्थित रूप प्रदान करता है।[17]

ट्रस्टीशिप का आधार गांधीवादी तीन अवधारणाएं हैं—अहिंसा, समता एवं स्वराज। ये
ीं एक दूसरे से संबंद्ध है। जो समाज अहिंसा पर आश्रित है, वह किसी भी अन्य आदर्श
जितना अधिक अपनाएगा, उतनी ही सरलता से हम समान वितरण के लक्ष्य को प्राप्त
सकेंगे। हम अपने लक्ष्य के प्रति जितना अधिक बढ़ते हैं, हमेशा उतना ही संतोष और
ी हासिल होती जाएगी और उतना ही हम अहिंसापूर्ण समाज की स्थापना में योगदान दे
ंगे।

र्भ सूची—

1. टूवर्ड्स लास्टिंग पीस : ए.टी. हींगोरानी द्वारा संपादित, मुंबई, भारतीय विद्या भवन, 1966
2. तेंदुलकर डी.जी. : महात्मा : लाइव ऑव मोहनदास करमचंद
3. दास रतन : गांधी इन ट्वन्टीफर्स्ट सेंचुरी, स्वरूप एंड संस, नई दिल्ली
4. देसाई नारायण : भारत में शांति सेना, सर्व सेवा संघ प्रकाशन।
5. दासगुप्ता, सुजाता : फिलॉसोफिकल अजंपशन्स फॉर ट्रेनिंग इन नॉन वायलेंस, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
6. दिवाकर आर.आर. : गांधी ए प्रेक्टिकल फिलोस्फर, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
7. दीक्षित गोपीनाथ : गांधीजी की चुनौती कम्युनिज्म को।
8. द मॉरल एंड पॉलिटिकल राइटिंग्स ऑव महात्मा गांधी, (वाल्यूम 1-3), क्लेरेंडन प्रेस ऑक्सफोर्ड, 1986
9. द वे टु कम्यूनल हारमनी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
10. द नेशन्स वॉयस (सं. सी. राजगोपालाचारी तथा कुमारप्पा), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।
11. देसाई, महादेव : महादेव भाई की डायरी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन।
12. धवन, गोपीनाथ : द पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑव महात्मा गांधी, सर्वोदय तत्त्व दर्शन, ऑक्सफोर्ड युनिपवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
13. नंदा वी.आर. गोखले : गांधी एंड नेहरू जार्ज अलेन एंड उनविल, लंदन, 1974।
14. नंदा वी.आर. : महात्मा गांधी एंड हर क्रिटिक्स, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिट, दिल्ली 1985
15. नारायण के.एल. : गांधी इन द आईज ऑव द वर्ल्ड, तेनाली पांडुरंग प्रेस, 1964
16. नागर, डॉ. पुरुषोतम : आधुनिक भारतीय सामाजिक एवम् राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
17. नारायण जयप्रकाश : गांधीज व्यू ऑव पॉलिटिकल पावर, डीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

— सहायक आचार्य
अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राज.)

अद्वैत एवं बौद्ध दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

(माध्यमिक-शून्यवाद-योगाचार एवं विज्ञानवाद के संदर्भ में)

— डॉ. योगेश कुमार जैन

दर्शन शब्द दृश् (दर्शनार्थक) धातु से निष्पन्न हुआ है। इसकी व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है। **''दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्''**1 जिसके द्वारा तत्त्वबोध संभव हो तथा **''दृश्यते इति दर्शनम्''** जिसका तत्त्वबोध हो। भारतीय दर्शन के संदर्भ में प्रथम व्युत्पत्ति ही सार्थक है। भारतीय दर्शन में वेदान्त-पूर्वमीमांसा, न्याय-वैशेषिक और सांख्य-योग ये सभी वैदिक दर्शन हैं तथा जैन, बौद्ध और चार्वाक ये अवैदिक दर्शन माने जाते हैं। शंकर का अद्वैत वेदान्त उपनिषदों पर आधारित दर्शन है। अद्वैत का तात्पर्य है मात्र ब्रह्म ही सत्य है, ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व नहीं है। यह ब्रह्म निर्गुण, निराकार और त्रिकाल अबाधित माना गया है। जीव और ब्रह्म में मूलतः अभेद होने पर भी माया के कारण उनमें भिन्नत्व दिखाई देता है। ब्रह्मसूत्र भाष्य में शंकर ने अद्वैत ब्रह्म की व्याख्या इस प्रकार की है—

''अस्य जगतों नामरूपाभ्यां व्याकृतस्या अनेककर्तृभोक्तसंयुक्तस्य
प्रतिनियतदेशकालनिमित्तक्रियाकलाश्रयस्य
मनसा अपि अचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्ग यतः
सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः करणाद् भवति, वद् ब्रह्म''2

अर्थात् नाम-रूप के द्वारा अव्यक्त, अनेक कर्त्ताओं एवं भोक्ताओं से संयुक्त ऐसे क्रिया और फल के आश्रय जिसके देश, काल और निमित्त व्यवस्थित है, मन से भी जिसकी रचना का विचार नहीं हो सकता है। ऐसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश जिस सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान कारण से होती है, वह ब्रह्म सर्वव्यापक, अधिष्ठाता, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान है।

वेदान्त में ब्रह्म की सत्ता व्यावहारिक, दैशिक, कालिक एवं वैचारिक सत्ताओं से विलक्षण है।3 द्रव्य रूप में सत् न होकर भी यह बराबर जगत् का अधिष्ठाता है। समस्त सामान्य